सन्देश संख्या ५८

पतंजलि के योगसूत्र – कैवल्यपाद

कैवल्यपाद

अद्वैत चतुर्थ एवम् अन्तिम सोपान है :

१. जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाःसिद्धयः ।
जन्म, औषधीय वनस्पति, मुक्तिप्रदायी छन्द मानसिक अनुबंधनों की आहुति तथा साम्यावस्था के प्रसाद पूर्णता और उत्कष (सिद्धयः) हैं।

२. जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ।
गुणों में परिवर्तनशीलता (जाति अन्तर) प्रकृति के अनुग्रह के विपुल प्रवाह (प्रकृति–आपूरात्) का परिणाम है।

३. निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ।
यद्यपि व्यक्ति का हस्तक्षेप महत्वपूर्ण प्रतीत हो सकता है (निमित्तमप्रयोजकम्) परन्तु वास्तव में उसके गुण और प्रकृति के माध्यम से ही सब कुछ क्रियान्वित होता है जैसे कि प्रकृति द्वारा ही उपज होती है, कृषक (क्षेत्रिकवत्) उसमें आने वाली बाधाओं को मात्र हटाता है (वरणभेद)।

४. निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ।
स्वार्थपरता चित्तवृत्ति के धूर्तता की ही अभिव्यक्ति मात्र है।

५. प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ।
विभिन्न अनुबन्धित प्रतिक्रियायें (प्रवृत्तिभेद) मन को अनेक वृत्तियों में विभक्त कर देती हैं (चित्तम्–एकम्–अनेकेषाम्)।

६. तत्र ध्यानजमनाशयम् ।
पूर्व संचय से मुक्ति (अनाशयम्) ही ध्यानावस्था का उदय है (ध्यानजम्)।

७. कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ।
योगियों के कर्म न तो शुभ होते हैं और न अशुभ क्योंकि वे द्वन्द्वभाव से मुक्त होते हैं (प्रत्यक्षबोध के फलस्वरूप), जबकि दूसरों की गतिविधियाँ तीन प्रकार की होती हैं– शुभ, अशुभ और मिश्रित (अवधारणाओं और अनुबन्धनों के फलस्वरूप) ।

८. ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ।
पूर्ति के लिए लालायित कामनायें और वासनायें व्यक्ति के लक्षणों और प्रवृत्तियों के उछलकूद के अनुरूप अभिव्यक्त होती हैं (यह उछलकूद या अत्यधिक तीव्रीकरण ही अहंकार है)।

९. जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं–स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ।
सम्पूर्ण मानव जाति में अनुभव और अनुबन्धन का ढाँचा जन्म, स्थान और काल की भिन्नता के बावजूद समरूप है। अस्तित्वमय अनन्त इस ढाँचे से परे है।

१०. तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ।
अस्तित्वमय अनन्त मंगलमय है जिसका न कोई आदि है, न कोई अन्त।

११. हेतुङ्गलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ।
संचित संस्कारजन्य प्रतिक्रियाओं, जिसमें कारण सदैव किसी विशि प्रभाव को उत्पन्न करता है (आश्रयालम्बनैः), का अभाव अनुभव और अनुबन्धन के ढाँचे से मुक्ति (तत्–अभाव) प्रदान करता है।

१२. अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणाम् ।
सहजावस्था में, भूत और भविष्यत् (मन की परिधि) से परे, सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि की उपलब्धि होती है जो कि जीवन का आधार है (अध्वभेदात् धर्माणाम्)।

१३. ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ।
और इस सहजावस्था में ही मन के अनुबन्धन के सूक्ष्म पहलुओं का उद्घाटन होता है।

१४. परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ।
इन उद्घाटनों का परिणाम द्वैत का विलय है और वही आनन्दमय अस्तित्व (वस्तुतत्त्वम्) है।

१५. वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ।
तब विभेदकारी चित्तवृत्ति के सब प्रकार की भिन्नताओं, द्वैत और विभाजनों के परे (चित्तभेदात्–तयोःविभक्ताः) आनन्दमय अस्तित्व के साथ एक अद्भुत सामञ्जस्य का उदय होता है।

१६. न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ।
आनन्दमय अस्तित्व का विभेदकारी चित्तवृत्ति के विषयों से कोई लेना–देना नहीं है (न च एक चित्ततन्त्रम् वस्तु)। यदि चित्तवृत्ति में स्मृति–आधारित पहचान न हो सके (तत् अप्रमाणकम्) तो क्या हो सकता है (तदाकिम्स्यात्)?

१७. तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ।

आनन्दमय अस्तित्व की झलक का मिलना और न मिलना (वस्तु ज्ञाताज्ञातम्) मन की यन्त्ररचना में उलझाव के परिमाण के अनुसार होता रहता है (ततः उपराग–अपेक्षित्वात् चित्तस्य)।

१८. सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ।
ब्रह्माण्डीय चैतन्य परिणामरहित, परिवर्तनरहित, विकल्परहित तथा नित्य है (पुरूषस्यापरिणामित्वात्)। मात्र यही मन और अहंकार (चित्तवृत्तयः) की संरक्षी–यंत्ररचना को सदैव देख सकता है (सदाज्ञातः) तथा उसे अतिक्रमित कर सकता है (तत्प्रभोः)। (दैनन्दिन कार्य–व्यवहार में रहने के बावजूद भी यह हमें मन–अहंकार की यंत्ररचना से मुक्त रख सकता है)।

१९. न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ।
इस खण्ड चैतन्य में न तो द्रष्टाविहीन दर्शन हो सकता है और न ही अन्तर्दृष्टि का उदय।

२०. एकसमये चोभयानवधारणम् ।
ब्रह्माण्डीय चैतन्य और अहंकार–चित्त (उभय) की सह–अवस्थिति नहीं हो सकती है।

२१. चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसमरश्च ।
जब मन की छवियों और निवेशों (चित्तान्तरदृश्ये) द्वारा प्रतयक्षबोध (बुद्धि बुद्धेः) भ्रान्त (अतिप्रसंगः) हो जाता है तब स्मृति के क्षेत्र तथा अनुभव के ढाँचे (स्मृति संकरश्च) में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है।

२२. चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ।
जब मन प्रत्यक्षबोध को दूषित करना बन्द कर देता है (चित्तेःअप्रतिसंक्रमायाः) तब ''जो है'' (तत्आकार) का उदय होता है (आपत्तौ)। यह प्रत्यक्षबोध (संवेदनम्) और अन्तर्दृष्टि (स्व–बुद्धि) की ओर ले जाता है।

२३. द्रृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ।
द्रष्टा और दृश्य (द्रष्टृदृश्य) के मध्य चित्तवृत्ति के द्वारा किये गये विभाजन (उपरक्तम्) के अतिक्रान्त हो जाने पर अस्तित्व का समस्त चमत्कार (सर्वार्थम्) उद्घाटित होता है ।

२४. तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ।
तब वासनाओं से उत्पन्न अगणित (असंख्येय) कल्पनाओं (चित्रम्) के होते हुए भी (अपि) अन्यत्व (परार्थम्) के साथ जीवन प्रवाह का सामञ्जस्य (संहत्यकारित्वात्) हो सकता है।

२५. विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ।
जब अहंबुद्धि का पूर्ण संहार हो जाता है(आत्म–भाव–भावना विनिवृत्तिः) तब एक अनिर्वचनीय तथापि अन्तर्निहित दृष्टि की संभावना (विशेष दर्शिनः) होती है।

२६. तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ।
तब विभेदकारी चित्तवृत्ति गहन विवेक की ओर मुड़ती है और इस प्रकार वह कैवल्य की ओर झुकती है।

२७. तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ।
फिर भी इस विवेक में अनुबन्धन और अन्य मनोवेगों के कारण छिद्र उत्पन्न हो सकते हैं।

२८. हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ।
इस प्रकार के अनुबन्धन को नकारने से ही अनेक प्रकार का क्लेश निवारण हो जाता है।

२९. प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ।
स्थितप्रज्ञावस्था में सहजावस्था का एक बढ़ता हुआ तीव्रीकरण होता रहता है। विवेकवान चैतन्य का चरमोत्कष तो एक प्रशांत जागृति की अवस्था है। यह तब घटित होता है जब किसी प्रकार की, यहाँ तक कि ज्ञान के सर्वोच्च स्थिति की भी, अभिलाषा नहीं रह जाती है अर्थात् जब वह हर प्रकार की चहल–पहल के प्रति उदासीन हो जाता है।

३०. ततः क्लेशकमनिवृत्तिः ।
तत्पश्चात् क्लेश निवारण तथा कारण–कार्य के चक्र से मुक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

३१. तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ।
तब सब प्रकार के आवरणों और अशुद्धियों को नकारने के माध्यम से प्रज्ञा पूर्णता प्राप्त कर लेती है तथा और कुछ भी जानने योग्य नहीं रह जाता है।

३२. ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ।
तदुपरान्त ऐसे धन्य तथा कृतार्थ लोगों के लिये अनुबन्धित प्रतिक्रियाओं के परिणामों के क्रम का अन्त हो जाता है। यही तो है पूर्ण मुक्ति ।

३३. क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ।
अनुबन्धित चित्त के परिणामों के (घटनाक्रम) की सच्चाई के प्रति क्षण –प्रतिक्षण जागरूक रहना चाहिए।

३४. पुरूषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ।
प्रतीत होने वाले अहंबोध के निष्कासन से सब प्रकार के अनुबन्धनों का आत्मसात् हो जाता है। इस प्रकार सहजावस्था के दृढ़ीकरण के कारण कैवल्य प्रतिष्ठित होता है और ब्रह्माण्डीय चैतन्य तथा ऊर्जा की पूर्ण झलक प्राप्त होने लगती है। अब शान्ति ही शान्ति।

।। तत् सत् ।।